ISSN- 2350-0530(O), ISSN- 2394-3629(P)
DOI: 10.5281/zenodo.3473448

INTERNATIONAL JOURNAL OF RESEARCH – GRANTHAALAYAH
A knowledge Repository

Social

पाशुपत–सम्प्रदाय के प्रवर्तकों में लकुलीश का स्थान

डा॰ सत्येन्द्र कुमार मिश्र[1]
[1] सहायक प्राध्यापक, एमिटी युनिवर्सिटी, लखनऊ, उत्तर प्रदेश

शोध-सारांश

पाशुपत–सम्प्रदाय की उत्पत्ति छठीं–पॉचवीं शताब्दी ई. पू. में हुई होगी। परन्तु इससे यह अभिप्राय नहीं निकालना चाहिए कि पाशुपत सम्प्रदाय का उद्भव छठवीं–पॉचवी शताब्दी ई. पू. कि कोई आकस्मिक घटना मात्र है, क्योंकि किसी भी धार्मिक संस्था अथवा विचारधारा का उद्भव विभिन्न प्रवृत्तियों और परम्पराओं और प्रवृत्तियों और परम्पराओं के पारस्परिक आदान–प्रदान एवं संघात के फलस्वरूप होता है, जो कि शताब्दियों से उस मत विशेष में होती रहती है। भारतीय धर्मसाधना और प्रवृत्तियों को निरन्तर सम्मिश्रण होता रहा है। अतः हम किसी भी धार्मिक संस्था अथवा सिद्धान्त को सर्वथा एकोन्मुख नही मान सकते है।

पाशुपत सम्प्रदाय के उद्भव का इतिहास अत्यधिक रोचक है, क्योंकि इसमें भारत की आर्य और अनार्य, वैदिक और अवैदिक, सभ्य और असभ्य, विकसित और अविकसित सभी परम्पराओं के तत्वों का समावेश हुआ है। पाशुपत मत शैव धार्मिक व्यवस्था का प्रथम साम्प्रदायिक उपज है, अतः शैव धर्म की उत्पत्ति की पृष्ठभूमि में ही पा ुपत सम्प्रदाय के निर्माणत्मक तत्वों का विश्लेषण उचित प्रतीत होता है।

भारत की सन्दर्भ में यह धारणा और भी अधिक समीचीन लगती है क्योंकि यहीं की धार्मिक विचारधारा उदार एवं सविष्णु आधारों पर विकसित हुई थी और इस उदारवादी प्रवृत्ति के कारण सभी धर्मो एवं विचारधाराओं में विभिन्न परम्पराओं और तत्वों को सम्मिश्रण हुआ।

मुख्य शब्द – पाशुपत सम्प्रदाय, लकुलीश, विचारधारा

Cite This Article: डा॰ सत्येन्द्र कुमार मिश्र. (2019). "पाशुपत–सम्प्रदाय के प्रवर्तकों में लकुलीश का स्थान." *International Journal of Research - Granthaalayah,* 7(9), 292-298. https://doi.org/10.5281/zenodo.3473448.

परिचय

पाशुपत सम्प्रदाय के आचार्यों के मध्य लकुलीश का नाम अग्रगण्य है। विभिन्न प्रकार के साहित्यिक एवं पुरातात्विक प्रमाणों के आधार पर यह असंदिग्ध रूप से सिद्ध किया जा सकता है कि पाशुपत तम को क्लासिकल रूप प्रदान करने का श्रेय इसी महान आचार्य को प्राप्त है। यह हर्षातिरेक का विशय है कि लकुलीश की ऐतिहासिकता अकाट्य साक्ष्यों के आलोक में स्थपित की जा सकती है।

लकुलीश की ऐतिहासिकता

अभिलेखीय साक्ष्य

1. लकुलीश की ऐतिहासिकता की ओर विद्वत्समाज का ध्यान सर्वप्रथम चिन्ता प्रशस्ति के द्वारा आकृष्ट हुआ। इस अभिलेख की तिथि व्यूलर महोदय ने 13वीं भाताब्दी ई. में गुजरात के बघेल

 ISSN- 2350-0530(O), ISSN- 2394-3629(P)
DOI: 10.5281/zenodo.3473448

राजा सारंगदेव के राज्यावधि में निश्चित की है, यह अभिलेख पुर्तगाल अधिकृत चिन्ता नामक स्थान से प्राप्त हुआ है। इसमें निम्नलिखित विवरण प्राप्त हुए हैं त्रिपुसन्तक नामक एक व्यक्ति ने पाँच मन्दिरों की स्थापना की थी जो वाल्मीकि ऋषि का शिष्य था और कार्तिक ऋषि का परम शिष्य था। कार्तिक ऋषि को गर्ग का आध्यात्मिक वंशज कहा गया है एवं गर्ग को लकुलीश के द्वितीय शिष्य का संबोधन प्राप्त हुआ है, लकुलीश को महादेव की संज्ञा प्रदान की गई है तथा उल्कापुरी में उत्पन्न घोषित किया गया है। यह भी कथित है कि इन्होंने प्रभासपट्टन में स्थित सोमनाथ के मन्दिर के समीपस्थ लाट देश में काया–अवरोहण नामक स्थान पर देवरूप धारण किया था। इस अभिलेख के द्वारा लकुलीश के ऐतिहासिक स्वरूप पर प्रकाश प्रस्फुटित होता है। लकुलीश के चार शिष्य हुए जिन्हें कुशिक, गार्ग्य, कौरूष तथा मैत्रेय बताया गया है जिन्हें पाशुपत व्रतों को सम्पादित करने वाला बताया गया है। ये चार शिष्य चार शाखाओं के संस्थापक के रूप में लब्धप्रतिष्ठ हुए।

2. राजपूताना में उदयपुर के उत्तर में चौदह मील पर नाथ जी के मन्दिर से एक अभिलेख उपलब्ध हुआ है, जो एकलिंगी जी के मन्दिर के निकट है। इसकी तिथि 971 ई. है। इस लेख के अनुसार भृगु द्वारा पूजित शिव ने भृगु कच्छ देश में एक मानव के रूप में अवतार ग्रहण किया। वह मानव हाथ में दण्ड अर्थात् लकुल (लगुड) धारी था। यह घटना काया–अवरोहण में घटित हुई। इस अभिलेख में भी कुशिक तथा अन्य शिष्यों का उल्लेख है, जिसे पाशुपत योग में रत और भस्म प्रयोग करने वाला बताया गया है तथा जटाजूट एवं पत्तों के वस्त्राभरणयुक्त भी संकीर्तित है।
3. मैसूर के सिरतालुक के हेमावती नामक स्थान से एक अन्य अभिलेख (943 ई.) प्राप्त हुआ है। इसके अनुसार लकुलीश ने मुनिनाथ कचल्लुक के रूप में पुनः जन्म लिया, जिससे उसका नाम और सिद्धान्त सुरक्षित रह सके।
4. उदयपुर के निकट से प्राप्त 1116 ई. के पलदी अभिलेख का प्रमाण भी उल्लेख्य है। इसके अनसार जब शिव ने कलियुग में धर्म का नाश होते देखा तथा भृगुकच्छ में काया–अवरोहण नामक स्थल पर अवतार ग्रहण किया। यद्यपि लकुलीश का नाम प्रत्यक्ष रूप से उल्लिखित नहीं है तथपि काया–अवरोहण के सम्बन्ध में शिव के अवतार की कथा अन्य प्रमाणांशुओं में लकुलीश से ही सम्बन्धित है। अतएव यह प्रमाण भी महत्व की पीठिका पर अवलंबित है।
5. चन्द्रगुप्त द्वितीय के काल का मथुरा स्तम्भलेख (380 ई) परोक्ष रूप से सम्भवतः लकुलीश से सम्बन्धित तथ्यों का उद्घाटन करता है। इसमें कुशिक का उल्लेख हुआ है, जिसे विद्वानों द्वारा लकुलीश के शिष्य कुशिक के रूप में अंगीकार किया गया है।

साहित्यिक साक्ष्य

लकुलीश की ऐतिहासिकता के लिए अभिलेखीय साक्ष्यातिरिक्त साहित्यिक साक्ष्य भी उपलब्ध है। वायुपुराण में इस आख्यान का उल्लेख किया गया है। इसके ग्यारहवें से लेकर तेईसवें अध्यायों तक पाशुपत–योग–विधि का विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया गया है तथा रुद्र के पूर्वगामी सताईस अवतारों का वर्णन भी किया गया है। यह भी बताया गया है कि इनमें से प्रत्येक अवतार का सम्बन्ध चार शिष्य से था, क्योंकि इन लोगों ने अपने योग–कौशल के माध्यम से रुद्रलोक को प्राप्त किया था। तेईसवें अध्याय (202 से 214) में लकुलीश को रुद्र का अठाइसवाँ अवतार माना गया है तथा कहा गया है कि काया–अवरोहण में श्मशान घाट पर रुद्र ने एक आठ वर्षीय ब्रह्मचारी के दिवंगत भारीर में प्रविष्ट होकर अठाईसवाँ अवतार ग्रहण किया था। इन्हें लकुलीश कहा गया है। इन्हें द्वैपनायन व्यास और श्रीकृष्ण वासुदेव का समकालिक घोशित किया गया है। इनके चार शिष्यों – कुशिक, गार्ग्य, मित्रक और रुष्ट का स्पष्टोल्लेख किया गया है। लिंगपुराण के (124–134) चौबीसवें अध्याय में भी लकुलीश के इस आख्यान का विवरण प्राप्त होता है। शिव पुराण के पंचम अध्याय (43–50) में भी यह कथा उल्लिखित है। इस दोनों स्थ्लों पर नकुल के स्थान पर नकलि लिखा हुआ है। लिंगपुराण व शिवपुराण के चारों शिष्यों के नाम कुशिक, मित्रक, गार्ग्य और कौरुश

 ISSN- 2350-0530(O), ISSN- 2394-3629(P)
DOI: 10.5281/zenodo.3473448

है। कूर्म पुराण का आख्यान (1–53–28) वायु पुराण के आख्यान से साम्य रखता प्रतीत होंता है। परन्तु कूर्म पुराण में उल्कापुरी के विश्वरूप के अपत्य के पूर्व जन्म एवं देहावसान की कथा लकुलीश के सम्बन्ध में निरूपित की गई है।

स्कन्दपुराण (5 / 48–63) में लकुलीश का आख्यान तो अवश्य आता है, परन्तु अन्य पुराणों के आख्यानों से किंचित् भित्रत्व को प्राप्त है। यथा इसमें रुद्र के पूर्वगामी सताईस अवतारों का उल्लेख नहीं है तथा उसके शिष्यों का भी उनुल्लेख है। लकुलि को लकुटि का संबोंधन दिया गया है एवं यह भी बताया गया है कि काया–अवरोहण से उज्जैन के समीप महाकाल वन में यह गए थे तथा वहाँ पर अपना निवास स्थल बनाया था। इस स्थान की महत्तातिशायी इस कारण है कि यहाँ पर कायाअवरोहणश्वर नामक लिंग की भी स्थापना की गई थी। लकुलीश की कथा अन्य साहित्यक ग्रन्थों में भी सुरक्षित है; जैसे कारवाण–माहात्म्य, जो कि एक उत्तरकालीन ग्रन्थ है, में इस आख्यान का पूर्ण विकसित स्वरूप दृष्टिगत होता है। इसके अनुसार ब्राहाण पिता विश्वराज और माता सुदर्शना के पुत्र के रूप में उल्कापुरी नामक ग्राम में वे उत्पत्र हुए थे। इस शिशु ने अनेक आश्चर्यजनक कृत्य सम्पादित किए, किन्तु सप्तम मासान्तराल में ही उसका निधन हो गया। उसकी माता ने एक निकट स्थित तीर्थ के जल में उसे फेंक दिया। उसे कच्छपो ने जालेश्वर लिंग पहुँचाया, जिसके फलस्वरूप उसे पुनः जीवन की प्राप्ति हुइ। तदुपरान्त वह काया–अवरोहण गए जहाँ पर उन्होंने भौवाचार्य के पद को सुशोभित किया। माधवाचार्य के सर्वदर्शन संग्रह में नकुलीश–पाशुपत अध्याय में भी इसका उल्लेख है। आत्मसमर्पण. तन्त्रालोक, पंचार्थ भाश्य प्रभृति में भी इसे पाशुपत–मत का संस्थापक बताया गया है। कौडिन्य के पंचार्थ–भाष्य में इस घटना का उल्लेख किया गया है तथा कहा है कि शिव, ब्राहाण शरीर धारण करके पृथ्वी पर काया–अवरोहण नामक स्थान पर अवतरित हुए। यहाँ से वे उज्जैनी गए एवं कुशिक नामक शिष्य को पाशुपत–सूत्रों की दीक्षा प्रदान की। गणकारिका की रत्नटीका में भी इस आख्यान की ओर इंगित करते हुए कहा गया है कि लकुलीश से प्रारम्भ कर राशीकर तक तीर्थकरों की उपासना करनी चाहिए।

विगत विवेचित अभिलेखीय एवं साहित्यिक साक्ष्यों के अतिरिक्त लकुलीश की ऐतिहासिकता उसकी प्रतिमाओं के द्वारा भी प्रमाणित की जा सकती है। राजपूताना, सौराष्ट्र, उत्तर प्रदेश आदि स्थानों से अनेक मूर्तियाँ उपलब्ध हुई हैं, जो लकुलीश की ऐतिहासिकता सिद्ध करती हैं। संक्षेप में इन प्रतिमाओं का उल्लेख भलाघनीय है। चन्द्रगुप्त द्वितय के मथुरा अभिलेख में भी लकुलीश का चित्रण किया गया है। जिसे दो भुजाओं वाला व त्रिनेत्र, खड़े रूप में प्रदर्शित किया गया है, उसके दाहिने हाथ में दण्ड है, बाएँ हाथ में सम्भवतः कपाल है। उड़िसा से भी 9वीं–10वीं शताबदी ई. की दो लकुलीश प्रतिमाये प्राप्त हुई हं। इसमें एक बद्ध पद्मासन मुद्रा में पद्मासन पर स्थित दिखलायी गई है। उसका दक्षिण हस्त भग्न है एवं वाम हस्थ में दण्ड है मथा उसके ही निकट दो अन्य लघु प्रतिमाये है, जिसे जितेन्द्रनाथ बनर्जी ने उनके चार शिष्यों में दो शिष्य का माना है।

लकुलीश की अपर प्रतिमा मुखलिंगम के सोमेश्वर मन्दिर से प्राप्त हुई है, जो चार भुजाओं से युक्त है, पद्मासनस्थ है जो दोनों किनारों पर चार दाढ़ी युक्त साधुओं की प्रतिमायें हैं,जो वाद–विवाद की मुद्रा में है, जिन्हें लकुलीश के चार शिष्यों की प्रतिमाओं के रूप में पहचाना गया है। विमुतियाँ समूह के (पूर्व मध्यकाल) देवालय में भी लकुलीश की एक प्रतिमा उपलब्ध हुई है। विगत बीस वर्षों में रतनचन्द्र अग्रवाल ने राजस्थान के विभिन्न भागों से लकुलीश की अनेक मूर्तियाँ प्राप्त किया है; यथा चित्तौड़ के सूर्य मन्दिर से लकुलीश के चार भुजाओं वाली मूर्ति, चित्तौड़ के ही कुंभ श्याम मन्दिर से दो भुजाओं वाली लकुलीश की मूर्ति, झालावाड़ एवं कोटा से प्राप्त लकुलीश मूर्तियाँ आदि। एम.आर. मजूमदार ने गुजरात से दो भुजाओं वाली खड़ी हुई लकुलीश की प्रतिमा का उल्लेख किया है। के. सी. पाणिग्रही ने मद्रास के निकट त्रिरूपरन से प्राप्त लकुलीश की प्रतिमा का विवरण प्रस्तुत किया है तथा अन्य पाशुपताचार्यों का उल्लेख किया है। के. पी. नौटियाल ने उत्तरांचल के कुमायूँ से प्राप्त लकुलीश की दो मूर्तियों का विवरण दिया है। अजमेर संग्रहालय में भी सप्तम–अष्टम भाताब्दी ई. की दो भुजाओं वाली लकुलीश मूर्तियाँ सुरक्षित हैं। इस संक्षिप्त विवरण से

 ISSN- 2350-0530(O), ISSN- 2394-3629(P)
DOI: 10.5281/zenodo.3473448

ध्वनित होता है कि सम्पूर्ण उत्तर भारत विशेष रूप से राजस्थान, गुजरात, उत्तर प्रदेश, उत्तरांचल, उड़सा एवं बंगाल में लकुलीश परम्परा ने लोकप्रियता प्राप्त की थी तथा चन्द्रगुप्त द्वितीय के मथुरा अभिलेख के काल से ही दसे उपास्य माना गया है। पी.सी. दीवान से यह मत व्यक्त किया था कि लकुलीश की ऐतिहासिकता इस तथ्य से प्रमाणित होता है कि उसे भुजाओं वाला चित्रित किया गया है।

यद्यपि सद्यः सम्पादित अनुसन्धानों एवं उत्खनों से प्राप्त चार भुजाओं वाली लकुलीश की प्रतिमाओं की उपस्थिति ने इस तर्क को निराधार बना दिया तथापि लकुलीश की प्रतिमाओं की लोकप्रियता पाशुपत–सम्प्रदाय की संरचना के इतिहास में उसके महत्वपूर्ण स्थान का निरुपण करती है। यह तथ्य कि उसे देवता के रूप में उपास्य बना लिया गया था, उसकी ऐतिहासिकता के विपरीत नहीं हो सकता, क्योंकि प्राचीन भारत में अनेक ऐसी समानांतर प्रवृत्तियाँ दृष्टिगत होती हैं। उदाहरण के रूप में गौतम बुद्ध, जो कि एक ऐतिहासिक व्यक्ति थे, को देवता के रूप में कालान्तर में महायान परम्परा में पूजा जाने लगा था तथा उनकी प्रतिमायें भी मन्दिरों में स्थापित की जाती थी।

अतः उपर्युक्त समीक्षात्मक विश्लेषणों के आधार पर लकुलीश को ऐतिहासिक व्यक्ति के रूप में स्वीकार किया जा सकता है, जो पाशुपत–सम्प्रदाय के निर्माण के लिए उत्तरदायी था, जिसे शिवावतार समक्षा जाता था तथा जिसने काया–अवरोहण, कायावतार, करोहण अथवा कायारोहन नामक स्थान पर अपना स्थान बनाया था।

लकुलीश की तिथि

लकुलीश की तिथि विवाद के गर्त में अवस्थित रही है, प्रारम्भ में जिस समय लकुलीश का नाम प्रकाश में आया, उस समय इसकी पहचान फ्लीट ने कालामुख पुरोहित–लकुलीशवर पंडित से की जो 1035 ई.में वेलगावे में पंचलिंग मन्दिर का अध्यक्ष था। लेकिन फ्लीट ने इस सिद्धान्त को डी.आर. भण्डारकर के अनुसन्धानों के आलोक में स्वयं त्याग दिया। डी आर. भणरकर ने प्रारम्भ में इस मत का प्रकटन किया कि लकुलीश प्रथम शताब्दी ई. से पूर्व का नहीं हो सकता, क्योकि लकुलीश का वायुपुराण में उल्लेख हुआ है और इस पुराण की तिथि प्रारम्भिक गुप्तकाल मानी जाती है. लेकिन डी.आर. भण्डारकर को 1931में चन्द्रगुप्त द्वितीय का मथुरा स्तम्भ अभ्लिेख प्रकाशन करने का सुअवसर प्राप्त हुआ। उस अभिलेख में उल्लेख है कि उदिताचार्य नामक एक माहेश्वर आचार्य ने अपने गुरूद्वय कपिल और उपभित के नाम पर दो शिवलिंगो की स्थापना की। उदिताचार्य को कुशिक से दशम् तथा परासर से चतुर्थ बताया गया है।

डी.आर भण्डारकर ने इस अभिलेख में उल्लिखित कुशिक का समीकरण लकुलीश के शिष्य कुशिक से स्थापित की है । इस प्रकार उन्होने लकुलीश को द्वितीय शताब्दी ई. के प्रथमार्घ निश्चित किया । इसके पूर्व रामकृष्ण गोपाल भण्डारकर ने महाभारत में उल्लिखित पाशुपत समप्रदाय का उत्थान और उसी आधार पर लकुलीश का काल पाँचरात्र मत के उदय से एक भाताब्दी पश्चात् अर्थात् द्वितीय शताब्दी ई. पूर्व में निश्चित किया था। वी.एस. पाठक ने डी. आर. भण्डारकर तथा अन्य विद्वानो के मतों की आलोचना की है एवं लकुलीश की तिथि द्वितीय शताब्दी ई. पूर्व मे निश्चित किया है, क्योकि मथुरा अभिलेख में आए हुए कुशिक की पहचान सन्देहास्पद है। राजशेखर ने निम्नांक्ति अट्ठारह आचार्यों का उल्लेख किया हे–

(1) नकुलीश,नकुलिन (2)कौशिक, (3)गार्ग्यै, (4) मैत्रेय, (5)कारौण या आकरौण, (6) ईशान, (7) पारगार्म्य,
(8) कपिलाण्ड, (9) मनुष्यक, (10) अपर कुशिक या (कुशिक 2), (11) आर्जं, (12) पिंगाालाक्ष अथवा पिंगल,
(13)पुष्पक या पुश्यक, (14) वृहदाचार्य अथवा वृहदार्य, (15) अगस्ति, (16) सन्तान, (17) राशिकर,
(18) विद्यागुरु

 ISSN- 2350-0530(O), ISSN- 2394-3629(P)
DOI: 10.5281/zenodo.3473448

हरिभद्र के षड्दर्शन् समुच्चय में भी 18 आचार्यों की यही सूची प्राप्त होती है जो राजशेखर की सूची के नामों से मिलता–जुलता है। इस सूची पर दृष्टिपात करने से ज्ञात होता है कि कौशिक नाम के दो आचार्य थे – प्रथम तो लकुलीश का प्रत्यक्ष शिष्य कौशिक था, द्वितीय इस सूची में दसवें स्थान पर है जिसे पाठक तथा अन्य विद्वानों ने कुशिक द्वितीय का नाम दिया है। इस सूची में 17वाँ तीर्थेश राशिकर है, जिसे पंचार्थभाष्य का रचयिता कहा गया है। पंचार्थभाष्य के आंतरिक साक्ष्यों के आधार पर इसकी तिथि चतुर्थ शताब्दी ई. का प्रारम्भिक काल है। यदि प्रारम्भिक चतुर्थ शताब्दी ई. का राशिकर कुशिक द्वितीय से सप्तम था तो मथुरा अभिलेख का उदिताचार्य, कुशिक द्वितीय से दशम् होगा। इस आधार पर पाठक ने इसका काल द्वितीय शताब्दी ई.पू. निश्चित किया है। पाठक का कथन है कि उनके इस विचार को एक इण्डोनेशियन परम्परा से बल उपलब्ध होता है जिसमें शिष्य पतंजलि के साथ पाभुपत पंच मण्डल के सदस्य बताए गए हैं। डेविड लोरेंजन ने अन्य आधारों पर इसकी आलोचना की है। उनके तर्क इस प्रकार हैं–

मथुरा अभिलेख में न तो लकुलीश शब्द आता है न तो पाभुपत। इसमें मात्र माहेश्वर का उल्लेख आया है जो उनके अनुसार किसी शैव उपासक को कहा जा सकता है। परन्तु वह स्वयं इस बात को स्वीकार करते हैं कि इस अभिलेख में दण्ड का उल्लेख किया गया है। लकुलीश की प्रतिमायें भी मिली हैं, अतएव वह लकुलीश –पाभुपत से सम्बन्धित है। द्वितीय कठिनाई कुशिक के पहचान की है। इस प्रकार उनका मत है कि मथुरा अभिलेख में कुशिक द्वितीय का उल्लेख है ती लकुलीश की तिथि भण्डारकर की तिथि से एक सौ वर्ष पूर्व खींची जा सकती है, किन्तु उन्होंने यह भी सन्देह व्यक्त किया है कि कुशिक तृतीय अथवा चतुर्थ का अस्तित्व सम्भावना से परे नहीं है। लकुलीश का काल इसी प्रकार द्वितीय शताब्दी ई. पू. से लेकर द्वितीय शताब्दी ई. के माध्य के विभिन्न कालखण्डों में रखा गया है। उदाहरणार्थ डी.आर. भण्डारकार द्वितीय शताब्दी ई. के प्रथमार्ध में रखते हैं। लोरेंजन महोदय इससे 100 वर्ष पूर्व अर्थात् प्रथम शताब्दी ई. पूर्व में लकुलीश का काल मानते हैं। पाठक द्वितीय शताब्दी ई. पूर्व में इसकी तिथि निर्धारित करते हैं तथा रामकृष्ण गोपाल भण्डारकर ने भी उनका काल द्वितीय शताब्दी ई. पूर्व निश्चित किया है। यह सर्वविदित है कि पाभुपत सूत्र, जिसे विद्वानों ने 100ई. से 200 ई. के मध्य निश्चित किया है, जिसे लकुलीश के द्वारा कुशिक को दिए गए शिक्षाओं का संग्रह माना जाता है। यदि प्रथम द्वितीय ाताब्दी ई. में इसे लिखित रूप प्राप्त हो गया था तो इसमें निस्सन्देह लकुलीश का अस्तित्व का निर्धारण ईसा की प्रथम शताब्दी ई. के पूर्व अवश्य हो गया होगा, यद्यपि पतजलि ने लकुलीश का उल्लेख प्रत्यक्ष रूप से नहीं किया है, लेकिन पाणिनि के सूत्रों के सम्बन्ध में दण्डधारी, चर्मधारी ि ाव–भागवतों का उल्लेख करता है जिससे अभिप्राय सम्भवतः लकुलीश पाभुपतों से था, क्योंकि लकुलीश की एक विशि टता दण्ड रही है। यह भी एक ऐतिहासिक तथ्य है कि चतुर्थ ाताब्दी ई. से लकुलीश की प्रतिमायें निर्मित होने लगी थी तथा वह देवरूप में उपासित भी हो गया था। यह परिवर्तन ऐतिहासिक व्यक्ति के परिप्रेक्ष्य में तीन–चार शताब्दियों के उपरान्त ही सम्भव है, जबकि उसकी स्मृति पूर्णतः धूमिल पड़ जाए, जैसा कि गौतम बुद्ध के सम्बन्ध में हुआ। अतः ज्ञान की वर्तमान स्थिति में प्रमाणों के आलोक में यही सुसंगत प्रतीत होता है कि ईसा के पूर्व की दो–तीन शताब्दियों में ही लकुलीश का उद्भव हुआ होगा।

लकुलीश व श्रीकण्ठ के मध्य सम्बन्ध का प्रश्न जटिल है। वाग्ची ने मत का प्रकाशन किया है कि लकुलीश सम्भवतः श्रीकण्ठ का शिष्य था। तंत्रालोक में लकुलीश और श्रीकण्ठ को संबंधित भी किया गया है, किन्तु दोनों में समय का अन्तर स्पष्ट करता है कि लकुलीश, श्रीकण्ठ के प्रत्यक्ष शिष्य नहीं हो सकते। अभिनव गुप्त द्वारा उद्धरित एक 'आगम' में कहा गया है कि लाकुल ने स्वच्छन्द से शिक्षा ग्रहण की।

ISSN- 2350-0530(O), ISSN- 2394-3629(P)
DOI: 10.5281/zenodo.3473448

निष्कर्ष

कूर्म पुराण में पृथु के पुत्र सु ाील की कथा के सम्बन्ध में एक सन्यासी श्वेताश्वेतर का उल्लेख किया गया है, जिसे पाभुपत–मत का संस्थापक कहा गया है। इस पुराण में कथित है कि सु ाील हिमगिरी पर तपस्या के निमित्त गए तथा शिव की अराधना की। श्वेताश्वेतर नामक श्रेश्ठ पशुपति संन्यासी प्रकट हुए जिन्होंने ब्रह्म ज्ञान एवं अपने सम्प्रदाय के व्रत की दीक्षा दी तथा उन्होंने यह विचार प्रकट किया कि ये योगी जिन्होंने हमारे द्वारा स्थापित सिद्वान्त का अनुशीलन किया है, वे महादेव के मनन में ध्यानावस्थित है। ऐसा प्रतीत होता है कि श्वेताश्वेतर महादेव के प्रथम अवतार थे, जिन्हें संक्षिप्त रूप में श्वेत की संज्ञा दी गयी है। कूर्म पुराण के श्वेत की ऐतिहासिकता संदेह की परिधि में है। परन्तु ऐसा अनुमानित है कि श्वेत की कल्पना श्वेताश्वेतर उपनिषद् के आधार पर की गई है, क्योंकि इस उपनिषद् में महादेव पशुपति के आर्श सम्मत स्वरूप का भक्ति भावना के साथ विवेचन किया गया है। यह ध्यातव्य तथ्य है कि पाभुपतों में दो वर्ग हो गए थें, जिनमें एक वेद सम्मत विचारों का पक्षपाती था जबकि दूसरा वर्ग वेद विरुद्ध था। ऐसा प्रतीत होता है कि पाभुपतों की वेदविरुद्ध परम्परा को सनातनी धर्मनिष्ठ समुदाय घृणास्पद दृष्टि से देखता था एवं इसी कारण पाभुपतों को प्रारम्भिक लोकप्रियता नहीं प्राप्त हुई और वैष्णव सम्प्रदाय जो अपनी प्रेरणा और स्रोत में वैदिक परम्परा को अंगीकृत कर चुका था, वह समाज में सर्वप्रियता को प्राप्त हो रहा था। गुप्तकाल तक यही स्थिति दृष्टिगत होती है।

गुप्तकाल में हिन्दू धर्म का पुनरुत्थान किया जा रहा था एवं पाभुपतों ने भी अपने धर्म को लोकप्रिय बनाने के दृष्टिकोण से वैदिक परम्परा को आत्मसात करने का प्रयास किया तथा इसी प्रयास के परिणामस्वरूप पुराणों में इस वेद सम्मत स्वरूप को प्रक्षिप्त किया जाने लगा। कूर्मपराण में वर्णित इस कथा से यह दृ ष्टिकोण अवगुण्ठनरहित हो जाता है। श्वेत की कल्पना अनैतिहासिक प्रतीत होती है। जिसको वेद सम्मत पाभुपतों ने अपने मत को लोकप्रिय बनाने के लिए की थी। कूर्मपुराण में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि श्वेत द्वारा स्थापित पाभुपत–सम्प्रदाय के धर्मग्रन्थ थे। उथर्वशिरस उपनि ाद् और यजुर्वेद का शतरूद्रीय खण्ड एवं उनका कर्त्तव्य अथवा वेदों का नित्य पाठ तथा अन्य वेद सम्मत अनुष्ठानों का आयोजन। पी.सी. दीवान ने श्वेताश्वेतर अथवा श्वेताचार्य को माहेश्वर योग का प्रणेता कहा है, जो पाभुपत–योग का अपरानिधान है। उन्होंने यह भी मत व्यक्त किया है कि श्वेताचार्य द्वारा स्थापित पाभुपत होता रहा जिसे कालान्तर में चलकर श्रीकण्ठ ने, जो अष्टादश्वाँ अवतार थे, पाभुपत व्रत की संस्थापना की। वायुपुराण में श्वेत को आदि आचार्य माना गया है तथा 23वें आचार्य का पुनः नाम श्वेत बताया गया है। प्रथम श्वेत के शिष्यों के नाम श्वेत, शिख, श्वेताश्व तथा श्वेतलोहित थे। श्वेताश्वेतर उपनिषद् में माहेश्वर के साम्प्रदायिक उपासना का स्पष्ट उल्लेख है। 943 ई. में मैसूर से प्राप्त हेमावती अभिलेख में अभिव्यक्त है कि लकुलीश ने मुनिनाथ चिल्लुक के रूप में पुनः जन्त ग्रहण किया था। जिससे कि उसके सिद्धान्त जीवतावस्था को प्राप्त हो सके। इस व्यक्ति की ऐतिहासिकता के विषय में कोई अन्य साक्ष्य उपलब्ध नहीं हुए हैं, न तो उसके क्रिया–कलापो का ही किचित ज्ञान है।

उपर्युकत विश्लेषण से प्रतिबिम्बित होता है कि पाभुपत–सम्प्रदाय की स्थापना के विषय में अनेक परम्परायें विद्यमान है। एक परम्परानुसार पशुपति शिव ने स्वयं इसकि स्थापना की थी। दूसरी परम्परा के अनुसार श्वेताचार्य नामक एक तपस्वी जो शिव का ही रूप था, ने पाभुपत–सम्प्रदाय की उस शाखा का प्रचालन किया, जिसे हम वैदिक पाभुपत शाखा का संबोधन प्रदान कर सकते हैं। एक अन्य परम्परानुसार श्रीकण्ठ जो साक्षात् शिव था, पाभुपत मत का उद्भावक था। एक अन्य परम्परा के अनुसार लकुलीश ने पाभुपत–सम्प्रदाय की उस शाखा का आविर्भाव किया, जिसे नकुलीश–पाभुपत शाखा की संज्ञा से विभूषित किया जाता है। लकुलीश के चार शिष्य थे – कुशिक, गार्ग्य, कौरू य तथा मैत्रेय। इन चार शिष्यों ने चार विभिन्न शिष्य परम्पराओं का संचालन किया, जो पाभुपत मत से सम्बन्धित थे, जिनमें कुशिक एवं गार्ग्य द्वारा प्रचलित गोत्रों का ऐतिहासिक प्रमाण उपलब्ध हुआ है, लेकिन मैत्रेय और कौरूष्य के शाखाओं का ज्ञान

 ISSN- 2350-0530(O), ISSN- 2394-3629(P)
DOI: 10.5281/zenodo.3473448

उपलब्ध नहीं है। इसके अतिरिक्त अनन्त गोत्र ने भी पाभुपत–सम्प्रदाय की किसी शाखा को अग्रसरित करने में सहायता दी थी। प्रारम्भ से लेकर हिन्दूकाल की समाप्ति तक पाभुपत मतावलम्बी संन्यासियों ने अनेक शाखाएँ स्थापित की जो सम्पूर्ण देश में परिव्याप्त थीं। यह कथन औचित्यपूर्ण न होगा कि इन्हीं शिष्य परम्पराओं के माध्यम से पाभुपत–सम्प्रदाय देश के विभिन्न भागों में सुविस्तार को प्राप्त हो गया है तथा समाज में इन्हीं के माध्यम से पाभुपतों का प्रभाव एवं वर्चस्व स्थापित हुआ।

संदर्भ

[1] भण्डारकर आर-जी-– वैष्णाविज्म, शैविज्म एण्ड माइनर रिलीजस सिसटम्स, पृ- 102–112
[2] लोरेंजन डेविड एन-– 'द कापालिकाज एण्ड कालामुखाज', पृ- 173–192 ने पाभुपतों पर हुए विश्लेषण की संक्षिप्त समीक्षा प्रस्तुत की है।
[3] रिलीजस ऑफ इण्डिया (पृ- 153–154)
[4] रिलीजस सेक्ट ऑफ दी हिन्दूज (सम्पादक– ई-आर- रास्ट, कलकत्ता, 1958) ने हिन्दू सम्प्रदायों का वर्णन प्रस्तुत कर प्रदर्शित किया है कि हिन्दु धर्म का प्राण उसका साम्प्रदायिक स्वरूप है।
[5] पंचम, षष्ठम शताब्दी ईसा पूर्व से वैदिक परम्परा का संघात क्षीणता को प्राप्त होने लगता है एवं अवैदिक धर्मो; जैसे– बौद्ध, जैन, शैव एवं वैष्णव की लोकप्रियता द्विगुणित होती जाती है। इन सम्प्रदायों के अधिसंख्यक साक्ष्यों की अभिव्यक्ति का बाहुल्य है, द्रष्टव्य– मजूमदार रमेशचन्द्र (स) दी एज ऑफ इम्पीरियल यूनिटी, पृ- 360–361,
[6] द्रष्टव्य– दी एज ऑफ इम्पीरियल यूनिटी, पृ- 462
[7] राधाकृष्णन, सर्वपल्ली– हिन्दू व्यू ऑफ लाइफ पृ- 28–29
[8] एगरपाल–द इण्डियन रिलीजस टेड्रीशन, पृ- 128–129
[9] मुकर्जी राधाकुमुद–फण्डामेंटल युनिटी ऑफ इण्डिया, पृ- 67
[10] अरविन्द श्री– भारतीय संस्कृति के आधार(पांडिचेरी, 1968), पृ- 154–235
[11] दी एज, ऑफ इम्पीरियल यूनिटी, पृ- 360। छठीं शताब्दी ई-पू- की क्रान्ति के लिये द्रष्टवय पाण्डे जी.सी.– स्टडीज ऑन ओरिजन्स ऑफ बुद्धिज्म, पृ- 310–368।
[12] द्रष्टव्य– ए काम्प्रेहिंसिव हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, भाग–2, पृ- 395।
[13] मार्शल, सरजान, मोहनजोदड़ो एण्ड दी इण्डस सिविलाइजेशन, भाग–1, पृ- 52।
[14] यदुवंशी, शैवमत, पृ- 25–38। द्रष्टव्य– भण्डारकर, डी- आर- शिव ऑफ प्री हिस्टारिक इण्डिया, जर्नल ऑफ इण्डियन सोसाइटी ऑफ प्री हिस्टारिक इण्डिया, जर्नल ऑफ इण्डियन सोसाइटी ऑफ ओरियन्टल आर्ट, भाग–5, पृ- 74–77।
[15] भण्डारकर आर-जी-– वैष्णाविज्म, शैविज्म एण्ड माइनर रिलीजस सिसटम्स, पृ- 102–112

*Corresponding author.
E-mail address: skmishra2@ lko.amity.edu